जैन कवियों द्वारा रचित हिन्दी काव्य में प्रतीक-योजना

विद्यावारिधि डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया डी० लिट्०,
अलीगढ़

हिन्दी का आदिम स्रोत अपभ्रंश की क्रोड में निहित है। काव्याभिव्यक्ति के अन्तर-बाह्य तत्त्वों का अवतरण अपभ्रंश से हिन्दी में हुआ है। काव्य में प्रतीकों की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैन कवियों द्वारा रचित हिन्दी काव्य में प्रतीक-योजना विषयक संक्षेप में चर्चा करना हमें यहाँ मूलतः ईप्सित रहा है।

वैय्याकरणों ने प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए स्पष्ट किया है—प्रत्येति प्रतीयते वा इति प्रतीकः प्रति इण्। अलीकादिब्यश्च इति औनादिक् सूत्रात् साधुः, आशय यह है कि यह शब्द प्रतिउपसर्गपूर्वक इण् (गतौ) धातु से उणादि निष्पन्न शब्द है। इस शब्द की व्युत्पत्ति कुछेक मनीषियों ने प्रतिपूर्वक इक् धातु से निष्पन्न मानी है और अर्थ किया है—आत्मा की ओर प्रवर्तन। जिस मूर्त वस्तु को किसी अमूर्त वस्तु के अभिज्ञान के निमित्त उपस्थित किया जाता है, उसे वस्तुतः प्रतीक कहते हैं।

वर्ण्य-विषय के भाव अथवा गुण की समता रखने वाले वाह चिह्नों को प्रतीक कहते हैं। प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य अथवा अप्रस्तुत विषय का प्रति-विधा। उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व कराने वाली वस्तु प्रतीक है। इस विवेचन से प्रतीक शब्द हमारे विवेच्य विषय में सहायक बनेगा।

प्रकृति क्रोड से गृहीत इन प्रतीकों को इन्द्रियगम्य कहा जाता है। इनके द्वारा अमूर्त भावनाएँ स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ करती है और उनका अर्थ-प्रभाव दूरगामी होता है। रससिद्ध कवियों द्वारा ऐसे अमूर्त भावरूपों को प्रतीकों द्वारा मूर्तायित किया जाता है कि इन्द्रियों द्वारा उनका सजीव तथा स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण सहज-सुगम हो जाता है। इस प्रकार प्रतीकों के सक्षम प्रयोग से अमूर्त भावनाओं का तलस्पर्शी गम्भीर प्रभाव पाठक अथवा श्रोता पर सहज में पड़ा करता है।

उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति तथा सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा के द्वारा प्रतीकों का परिपोषण हुआ करता है। सारोपा लक्षणा उपमान तथा उपमेय एक समान अधिकरण वाली भूमिका में वर्तमान रखते हैं। साध्यवसाना में उपमेय का उपमान के अन्तर्भाव हो जाता है। सादृश्यमूलक सारोपा लक्षणा की भूमिका पर रूपक अलंकार द्वारा प्रतीक विधान आधृत होता है तथा सादृश्यमूलक साध्यवसाना की भूमिका पर अतिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से प्रतीक स्थिर किए जाते हैं। इस प्रकार इन प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त भाव-सम्पदा की गम्भीरता और उत्कृष्टता का सन्धान सम्पन्न होता है। मूर्त और अमूर्त भावनाओं की अभिव्यक्ति विभूति को विकसित करने का मुख्यतः श्रेय व्यवहृत प्रतीकों पर निर्भर करता है।

प्रतीक योजना की सफलता प्रतीकों के स्वाभाविक अर्थ-बोध पर आधारित है। ऐसा न होने पर व्यवहृत प्रतीक हमारे हृदय के आन्तरिक रागों एवं भावों को प्रभावित करने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार भावाभिव्यंजना के लिए अप्रस्तुत का प्रयोग रस-बोध और भाव-प्रबोध में जब पूर्णतः सफलता प्राप्त करता है। वस्तुतः प्रतीक प्रयोग तभी समर्थ कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीक दो प्रकार के होते हैं—१. सन्दर्भीय, २. संघनित।

सन्दर्भीय प्रतीकों के वर्ग में वाणी और लिपि से व्यक्त शब्द राष्ट्रीय पताकाएँ, तारों के परिवहन में प्रयुक्त होने वाली संहिता, रासायनिक तत्वों के चिह्न आदि हैं। संघनित प्रतीकों के उदाहरण धार्मिक कृत्यों में और स्वप्न तथा अन्य मनोवैज्ञानिक विवशताओं जन्य प्रक्रियाओं में मिलते हैं। ऐसे प्रत्येक प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति या व्यवहार के स्थानापन्नों के संघनित रूप होते हैं और चेतन या अचेतन संवेगात्मक तनावों के मुक्त प्रसरण में सहायता देते हैं। व्यवहारिक जीवन में इन दोनों प्रकार के प्रतीकों का मिश्रण मिला करता है।

विभिन्न संस्कृतियों के अनुसार प्रतीकों के रूप तथा अभिप्राय भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। साहित्य में रस के उत्कर्ष में नाना प्रकार के प्रतीकों को गृहीत किया जाता है। साभ्यता, शिष्टाचार, आधार, व्यवहार, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, लोकरंजन तथा काव्यशास्त्र प्रभृति के अनुसार काव्य में प्रतीकों के प्रयोग हुआ करते हैं। प्रतीकों में भाव उद्बोधन की शक्ति आवश्यक होती है। प्रतीकों में केवल सादृश्य मूलक उपमानों से भाव-प्रवणता की क्षमता नहीं हुआ करती। यही कारण है कि सपक्ष कवि अपनी मार्मिक अन्तर्दृष्टि द्वारा ऐसे प्रतीकों का विधान करता है। जो प्रस्तुत की भावाभिव्यंजना में सपक्षता प्राप्त कर सके।

भाव और विचार की दृष्टि से प्रतीकों के दो भेद किए जा सकते हैं। यथा—

१. भावोत्पादक प्रतीक, २. विचारोत्पादक प्रतीक।

यद्यपि विचार और भाव में स्पष्ट अन्तर स्थिर करना सरल नहीं है। प्रभावोत्पादक और विचारोत्पादक प्रतीकों में पारस्परिक उपस्थिति बनी ही रहती है।

भावाभिव्यक्ति में सरलता, सरसता तथा स्पष्टता उत्पन्न करने के लिए रससिद्ध कवि प्रतीक-योजना का प्रयोग करते हैं। जैन कवियों की हिन्दी काव्यकृतियों से भी प्रतीक-योजना का व्यवहार हुआ है। इन कवियों के समक्ष काव्य-सृजन का लक्ष्य अपने भावों तथा दार्शनिक विचारों के प्रचार-प्रसार का प्रवर्तन करना प्रधान रूप से रहा है। इसलिए इन्होंने युगानुसार प्रचलित काव्यरूपों, लक्षणों तथा उन समग्र उपकरणों को गृहीत किया है जिनके माध्यम से इनकी काव्याभिव्यक्ति में सरसता और सरलता का संचार हो सके।

इस प्रकार हिन्दी जैन-काव्य में व्यवहृत प्रतीकों का हम निम्न रूपों में वर्गीकरण कर सकते हैं। यथा—

१. विकार और दुःख विवेचक प्रतीक, २. आत्मबोधक प्रतीक, ३. शरीरबोधक प्रतीक, ४. गुण और सर्वसुखबोधक प्रतीक।

आध्यात्मिक अनुचिन्तन तथा तत्त्व-निरूपण करते समय इन कवियों द्वारा अनेक ऐसे प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है जिन्हें उक्त विभागों में संख्यायित नहीं किया जा सकता है। यहाँ हम हिन्दी जैन-काव्य में व्यवहृत प्रतीकों की स्थिति का अध्ययन शताब्दि क्रम से करेंगे ताकि उनके विकास पर सहज रूप में प्रकाश पड़ सके।

पन्द्रहवीं शती में रची गई काव्यकृतियों को हम काव्यरूपों की दृष्टि से अनेक भागों में विभाजित कर सकते हैं—मुख्यतः प्रबन्ध और मुक्तक रूप में समूचे काव्य कलेवर को विभाजित किया जा सकता है—१. प्रबन्धात्मक-चरित, पुराण तथा रासपरक कृतियाँ और २. मुक्तक-अनेक काव्यरूपों में आराध्य की अर्चना तथा भक्ति-भावना की अभिव्यंजना हुई है।

प्रारम्भ में अभिधामूला अभिव्यक्ति का प्रचलन रहा हैं फिर भी मनीषी और सारस्वत क्षेत्र में अभिव्यक्ति के स्तर का उत्कर्ष हुआ है। किन्तु जैन कवियों के समक्ष अपने आध्यात्मिक माहात्म्य को अभिव्यक्त कर जन-साधारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में उसका प्रचार-प्रसार करना अभीष्ट रहा है। यही कारण है कि उन्होंने काव्यकौशल की ओर अधिक जागरूकता का परिचय नहीं दिया है।

आध्यात्मिक अभिव्यक्ति को सरल और सरस बनाने के लिए इन कवियों द्वारा लोक में प्रचलित प्रतीकों का सपन्नतापूर्वक प्रयोग हुआ है। अपने समय में काव्य जगत् में प्रचलित काव्यरूपों-छन्दों तथा अलंकारों की नाईं इन कवियों ने प्रतीकात्मक शब्दावलि को भी गृहीत किया है।

पन्द्रहवीं शती के प्रसिद्ध कवि सधारु विरचित प्रद्युम्न चरित्र में अनेक प्रतीकात्मक प्रयोग परिलक्षित हैं। नायक प्रद्युम्न को जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है उस समय मोह, अज्ञानता का समूल खण्डन करने में वह समर्थ हो जाता है। यहाँ कवि ने तिमिर शब्द का मोह के अर्थ में प्रतीकात्मक व्यवहार किया है। ऐसी स्थिति में सांसारिक लाज से वह मुक्त हो जाता है। इस उल्लेखनीय उपलब्धि पर इन्द्र-गण जयजयकार बोलकर बधाइयाँ देते हैं। यहाँ पाश शब्द का संसार-जाल अर्थात् आवागमन के बन्धन परक प्रतीकार्थ प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग हिन्दी संत कवि कबीर तथा भक्त कवि सूर, तुलसी, मीरा आदि के द्वारा प्रचुरता के साथ हुआ है।

संसार के लिए सिन्धु शब्द का प्रतीकार्थ प्रयोग हिन्दी में पर्याप्त प्रचलित रहा है। कविवर मेरुनन्दन उपाध्याय विरचित सीमन्दर जिन स्तवन में सिन्धु प्रतीक का व्यवहार परिलक्षित है। इसीप्रकार सभी प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले भावार्थ में कामघट, देवमणि देवतरु शब्दावलि प्रतीक रूप में व्यवहृत हैं। हिन्दी में देवतरु के स्थान पर कल्पतरु का खूब प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार देवमणि के स्थान पर चिन्तामणि का व्यवहार पर्याप्त रूप में उल्लिखित है। कवि द्वारा इन शब्दावलियों का प्रयोग वस्तुतः नवीन ही कहा जाएगा।

विवाहला काव्यों में जैन कवियों ने नायक का किसी कुमारीकन्या के साथ में विवाह नहीं कराया है अपितु दीक्षाकुमारी अथवा संयमश्री के साथ उसे वैवाहिक संस्कार में दीक्षित किया है। यहाँ दीक्षा लेने वाला साधु या नायक दुलहा है और दीक्षा अथवा संयमश्री दुलहन है। जिनोदय सूर कृत विवाहला में आचार्य जिनोदय का दीक्षा कुमारी के साथ विवाह उल्लिखित है। इस अभिव्यक्ति में कुमारी शब्द प्रतीकार्थ है। जैन कवियों का यह प्रयोग वस्तुतः अभिनव है।

इसी प्रकार सोलहवीं शती के समर्थ कवि जिनदास हैं, जिन्होंने अनेक सुन्दर काव्यों का सृजन किया है। आदि पुराण नामक महाकाव्य में कर्मभूमि का उल्लेख है। भगवान् ऋषभदेव ने नष्ट कर्मों की स्थापना की थी। उन्होंने सांसारिक प्राणियों को धर्माधर्म का विवेक भी प्रदान किया था। ऐसा करने में उन्हें सफलता इसलिए प्राप्त हुई क्योंकि उन्होंने राजपुत्र होते हुए स्वयं भी संयम और तप-साधना के बलबूते पर मुक्तिवधु को वरण कर लिया था। मुक्ति वरण करने के कारण ही कवि उन भगवान् के गुणों को सद्गुरु के प्रसाद से जान पाता है और तभी प्रसन्न होकर भगवान् की भव-भव में अवसर पाकर सेवा करने की कामना करता है इस आध्यात्मिक तथा भक्त्यात्मक अभिव्यक्ति में कवि ने मुक्ति प्रतीक का सफल प्रयोग किया है। मुक्तिवधु का प्रतीकार्थ प्रयोग संतों द्वारा प्रचुरतापूर्वक हुआ है।

इसी प्रकार कवि ने शिवपुर का मोक्ष के लिए प्रतीक प्रयोग किया है। यह वस्तुतः लक्षणामूला प्रतीक प्रयोग है। शिवपुर का प्रतीक प्रयोग यशोधरचरित्र, सिद्धान्त चौपाई में सफलतापूर्वक हुआ है।

कविवर बूचराज ने परम्परानुमोदित सागर शब्द संसार अर्थ में अपने पदों की रचना में किया है। हिन्दी के संत कवियों द्वारा सागर शब्द संसार के अर्थ में प्रतीक स्वरूप अनेक बार व्यवहृत है।

कवि ने षट् लेश्या विषयक प्रतीक प्रयोग पंथी गीत नामक काव्य में किया है। सांसारिक सुख के लिए मधुकण का प्रयोग वस्तुतः जैन कवियों की अभिनव देन है। एक पंथी सिंहों के वन में पहुँचा। मगभ्रम में वह भटक गया और सामने से उसे एक हाथी दिखाई पड़ा। वह रौद्र रूपी तथा क्रोधी स्वभावी था—फलस्वरूप उसे देखकर पंथी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयभीत हुआ और दौड़ता हुआ एक कुएँ में गया। जिसकी दीवाल में एक उगी टहनी को उसने पकड़ लिया। ऊपर हाथी, चार दिशाओं में सर्प, नीचे अजगर तथा टहनी को दो चूहे काट रहे थे, पास ही वटवृक्ष पर मधुमक्खियों का छत्ता था। हाथी ने उसे हिलाया और छत्ते से मधुकण चू पड़ा जो पंथी के मुँह में जा पहुँचा। उस आनन्द में वह घोर दुःखों को भूल गया। वस्तुतः यह मधु का स्वाद ही सांसारिक सुख है। पथिक जीव का प्रतीक है हाथी अज्ञान का प्रतीक है। चूहा संसार का प्रतीक है। सर्प गति का प्रतीक है। मक्खियाँ व्यक्तियों का प्रतीक है। अजगर विनोद का प्रतीक है। मधुकण सांसारिक क्षणसुख का प्रतीक है। यह प्रतीक प्रयोग आज भी जैन मंदिरों में सचित्र मिलता है, अत्यन्त लोकप्रिय है।

आगे कवि ने पंचेन्द्रिय बेलि नामक कृति में घट को प्रतीकार्थ में व्यवहृत किया है। घट प्रतीक है शरीर अथवा आत्मा का। अशुचि घट होने पर तप-जप तथा तीर्थ आदि करना वस्तुतः निस्सार ही है। कवि ने यहाँ घट की निर्मलता पर बल दिया।

प्रतीकार्थ काव्यसृजन करने में कविवर बूचराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पंथिगीत की भाँति इन्होंने भी समूचा काव्य ही प्रतीकार्थों में रचा है। टंडाणा टांड शब्द से बना है जिसका अर्थ है व्यापारियों का चलता हुआ समूह। यह विश्व भी प्राणियों का समूह है अस्तु तंडाणा संसार का प्रतीक है। इस काव्य में प्राणीमात्र को संसार से सजग रहने को कहा गया है।

मुनि विनयचन्द्र विरचित चूनड़ी काव्य भी प्रतीकात्मक रचना है। इसमें जैन शासन के विभिन्न सिद्धान्त रूपी बेल-बूटे प्रकाशित हैं जिसे रंगरेज रूपी पति ने सभाला है। यह प्रयोग भी कवि द्वारा अभिनव खोज है।

सोलहवीं शती के रससिद्ध कवि हैं ठकुसी। आपकी पंचेन्द्री बेलि नामक रचना भी प्रतीकात्मक काव्य है। बेलि वस्तुतः वासना का प्रतीक है। इस शती में प्रतीक प्रयोगों की अपेक्षा समूची कृति ही प्रतीकात्मक रची गई हैं।

पण्डित भगवतीदास सत्रहवीं शती के विद्वान् कवि हैं। मनकरहारास आपका प्रतीक काव्य ही है। इसमें मन को करहा अर्थात् ऊँट को चित्रित किया गया है, इसका स्रोत अपभ्रंश के मुनिवर रामसिंह से गृहीत हुआ है। उन्होंने पाहुड़ दोहा में करहा मन के रूप में उपमान रूप में गृहीत किया है। मनकरहारास में संसाररूपी रेगिस्तान में मन रूपी करहा के भ्रमण की रोचक कहानी कही गई है।

सत्रहवीं शती के दूसरे समर्थ कवि हैं भट्टारक रत्नकीर्ति जी। आपने एक पद में गिरिनार शब्द का प्रतीकात्मक सपक्ष प्रयोग किया है। जैन कथानकों में तीर्थंकर नेमिनाथ विषयक प्रसङ्ग में गिरिनार शब्द का व्यवहार हुआ है। जो वैराग्य स्थली के अर्थ में स्वीकृत हो गया है। चिन्तामणि शब्द का प्रतीकात्मक प्रयोग कविवर कुशल लाभ विरचित गौडी पार्श्वनाथ स्तवन नामक काव्य से परम्परानुमोदित हुआ है। चिन्तामणि का प्रयोग मनोकामना के उद्देश्य से हिन्दी में आरम्भ से ही हुआ हैं। विशेषकर हिन्दी भक्तिकालीन महात्मा तुलसीदास तथा सूरदास द्वारा चिन्तामणि शब्द का सफलता-पूर्वक प्रयोग हुआ है।

इस काल के विद्वान् कवि बनारसीदास जैन द्वारा प्रतीकात्मक प्रयोग द्रष्टव्य हैं। आपने नट शब्द का प्रतीक प्रयोग प्रचुरता के साथ किया हैं। जिसका अर्थ है आत्मा जो-जो कर्मानुसार नानारूप धारण करती है जिस प्रकार नट विविध स्वांग करता है। समयसार नामक कृति में कविवर ने अनेक प्रतीकों का सपक्ष प्रयोग किया है। कविवर यशोविजय उपाध्याय विरचित आनन्दघन अष्टपदी नामक काव्य में पारस शब्द प्रतीक रूप में व्यवहृत है और उसका प्रतीकार्थ है सद्संगति। कविवर हर्षकीर्ति द्वारा रचित पंचगतिबेलि पूरा ही प्रतीक काव्य है जिसमें इन्द्रियों के विजय आसक्तियों का विशद उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवर कुमुदचन्द्र ने बनजारा गीत नामक प्रतीक काव्य की रचना की है। इस काव्य में बनजारा मनुष्य है जिस प्रकार बनजारा इधर-उधर विचरण करता है उसी प्रकार यह मनुष्य भी भव-भ्रमण करता है। भट्टारक रत्नकीर्ति ने नेमिनाथ बारहमासा में विरह शब्द प्रतीक रूप में व्यवहृत किया है इसका प्रतीकार्थ है काम। कविवर मनराम द्वारा हीरा शब्द प्रतीक रूप में व्यवहृत किया गया है जिसका अर्थ है अनमोल मानव जीवन।

अठारहवीं शती के सशक्त हस्ताक्षर भैय्या भगवतीदास द्वारा मधुबिन्दुक की चौपाई नामक ग्रन्थ में अजगर शब्द का व्यवहार प्रतीक रूप से हुआ है जिसका अर्थ है काल विकराल। शतअष्टोत्तरी नामक काव्य में कवि ने अनेक प्रतीकों का एक ही प्रसङ्ग में सपक्ष प्रयोग किया है। सुआ, आत्मा का प्रतीक है, सेवर, संसार के कमनीय विषयों का प्रतीक है, आम, आत्मिक सुखों का प्रतीक है और तूल, सांसारिक विषयों को सारविहीनता का प्रतीक है। अन्त में काव्य में कवि द्वारा आत्मा को सांसारिक रीत्यानुसार चलने के लिए सावधान रहने की संस्तुति की है। इस प्रयोग में कवि की लौकिक और आध्यात्मिक अभिज्ञता सहज ही में प्रमाणित हो जाती है। अजयराज पाटनी द्वारा रचित चरखाचौपाई नामक काव्य में चरखा प्रतीक रूप में प्रयुक्त है। यहाँ चरखा मानव-जीवन का प्रतीक है।

कविवर द्यानतराय और वृन्दावनदास द्वारा अनेक काव्यों में प्रतीकात्मक प्रयोग हुए हैं। इनकी कविता में तम शब्द अज्ञान और मोह के लिए प्रयुक्त है। कुछ प्रतीक प्रयोग सार्वभौम है। इस दृष्टि से सिन्धु शब्द संसार अर्थ में प्रयुक्त है।

उन्नीसवीं शती में कल्पवृक्ष का प्रतीक प्रयोग उल्लेखनीय हैं। कविवर महाचन्द्र ने अपने एक पद में कल्पवृक्ष का व्यवहार धार्मिक अभिव्यक्ति से किया है। कल्पवृक्ष सार्वभौम प्रतीक है, जिसके अर्थ हैं सभी प्रकार के मनोरथों का पूर्णरूप। भागचन्द्रजी इस काल के मनीषी हैं, आपने गंगानदी रूपक में अनेक प्रतीक प्रयोग स्वीकार किए हैं। यहाँ पानी ज्ञान का प्रतीक है, पंक संशय का प्रतीक है, तरंग सप्तभंग न्याय का प्रतीक है और मराल सन्तजनों का प्रतीक है। कवि का कहना है कि ऐसी गंगाधारा में स्नान करना कितना हितकारी है जिससे प्राणी पूर्णतः विशुद्ध हो जाता है।

इस शती का सशक्त काव्यरूप है पूजा जिसमें कवियों ने अनेकविध प्रतीकात्मक प्रयोग किए हैं। इस दृष्टि से कवि वृन्दावनदास का उल्लेखनीय स्थान है। श्रीपद्मप्रभु की पूजा से तिमिर शब्द मोह अर्थ में प्रयुक्त है। इसी प्रकार कविवर बुधजन ने नींद शब्द का प्रयोग प्रतीक रूप में किया है जिसका अर्थ है मोह। इसी प्रकार शान्तिनाथ पूजा में शिवनगरी का प्रयोग प्रतीक रूप में हुआ है जिसका अर्थ है मोक्ष अर्थात् आवागमन से विमुक्त।

कविवर क्षत्रपति जी ने सिन्धु शब्द का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है जिसका अर्थ है, दुःख। यह प्रयोग विरत ही है। कविवर मंगतराय ने सिंह शब्द प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है जिसका अर्थ है, विकराल काल।

ऊपर किए गए शताब्दि-क्रम में विवेचन से हिन्दी जैन कवियों द्वारा व्यवहृत प्रतीक योजना का परिचय सहज में ही हो जाता है। पन्द्रहवीं शती के काव्य में प्रतीकात्मक शब्दावली का यत्र-तत्र व्यवहार हुआ है, जिनके प्रयोग से काव्याभिव्यक्ति में उत्कर्ष के परिदर्शन होते हैं। सोलहवीं शती में प्रतीक-प्रयोग में विकास के दर्शन होते हैं। इस समय के रचित काव्य में प्रतीक शब्दावलि के साथ-साथ प्रतीकात्मक रचनाएँ भी रची गयी हैं जिनमें जैन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। सत्रहवीं शती में जैन कवियों द्वारा सार्वभौम प्रतीकों का व्यवहार हुआ है, साथ ही नवीन प्रतीकात्मक शब्दावलि भी अपनी प्रयोगात्मक स्थिति में सम्पन्न है, यथा—मानस्तम्भ गिरिनार, नवकार, समयसार तथा बनजारा। एक ही कविता में प्रतीकों के प्रयोग दर्शनीय हैं इस काल के कवियों की कलात्मकता-क्षमता का परिचायक है। सत्रहवीं शती की भाँति अठारहवीं शती में भी प्रतीक-विषयक बातों का परिपालन हुआ है। पूरा का पूरा काव्य प्रतीक रूप में रचने का रिवाज यहाँ भी रहा है। इस दृष्टि से चरखा चौपाई उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शती में विरचित हिन्दी काव्य में जैन कवियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों का प्रयोग उल्लेखनीय है। सार्वभौम प्रतीकों के अतिरिक्त पूर्ण प्रतीक-काव्य रचे गए हैं। इस दृष्टि से सम्मेद शिखर उल्लेखनीय काव्य हैं। साथ ही साथ एक शब्द में अनेक प्रतीक-प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

इस प्रकार यह सहज में कहा जा सकता है कि जैन कवियों की हिन्दी रचनाएँ भी प्रतीकों के प्रयोग से सम्पन्न हैं और कहीं-कहीं तो नवीन प्रयोगों से हिन्दी का भंडार भरने में सहायक की भूमिका निर्वाह करते हैं।

सन्दर्भित ग्रन्थों की तालिका—

१. अमरकोश टीका, भट्टोजी दीक्षित।

२. साहित्य कोश, सम्पादित डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम भाग।

३. पाइटिक इमेज, सी० डी० लेविस।

४. पाइटिक पेअन, रोपिज स्क्लैंटन।

५. जैन कवियों के हिन्दी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन, डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया।

६. आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र-विधान, डा० रामयतन सिंह भ्रमर।

७. आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान, डा० नरेन्द्र मोहन।

८. काव्यदर्पण, प० रामदहन मिश्र।

९. काव्यशास्त्र, डा० भगीरथ मिश्र।

१०. गुण ठाणा गीत, मनोहर दास।

११. गौडी पार्श्वनाथ स्तवन, कुशल लाभ।

१२. चरखा शतक, भूधर दास।

१३. चूनड़ी, ब्र० जिनदास।

१४. जम्बू स्वामी बिबाहुआ, हीरानन्द सूरि।

१५. जैन पदावलि, जगतराम।

१६. नेमिनाथ बारहमासा, लावण्य समय।

१७. प्रद्युम्न चरित्र, सधारु।

१८. बनारसी विलास, बनारसीदास।

१९. बारह भावना, मगत राय।

२०. बाइस परिणय, भैय्या भगवतीदास।

२१. मनकरहा रास, पं० भगवतीदास।

२२. विवाहलो काव्य, डा० पुरुषोत्तम मेनारिया।

२३. समयसार नाटक, बनारसीदास।

Jain Eduçation International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ ।

२५. पूजा काव्य, मनरंग लाल ।

२६. चूनड़ी काव्य, मुनि विनयचन्द्र ।

२७. बनजारा गीत, कुमुदचन्द्र ।

२८. मधुबिन्दु की चौपई, भैय्या भगवतीदास ।

२९. बनजारा गीत, कुमुदचन्द्र ।

३०. बारहमासा, रत्नकीर्ति ।

३१. शत अष्टोत्तरी, भैय्या भगवतीदास ।

३२. चरखा चौपई, अजयराज पाटनी ।

३३. पदसग्रह, भागचन्द्र ।

३४. साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ।

३५. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डा० नामवर सिंह ।

३६. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, नाथूराम प्रेमी ।

३७. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, बाबू कामताप्रसाद जैन ।

३८. ज्ञानपंचमी चौपई, विद्धणु कवि ।

३९. ज्ञान छन्द चालीसी, भवानीदास ।

४०. इमेजिनेशन, ई० जे० पत्रलोंग ।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org